।। जगति श्री विट्ठलो जयति।।

बृहद् वामनीपुराण में वर्णित ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण की महिमा, विधि तथा कथानक पूर्वक तिर्यक्पुण्ड्र का निषेध

प्रकाशक :

श्री विट्ठलेश युवा परिषद्

चौपासनी, जोधपुर

भाद्रपद शुक्ला 5, संवत् 2074

न्यौछावर : 25/-

श्री विट्ठलेश युवा परिषद्

संरक्षक : गो. श्री 108 श्री विट्ठलनाथ जी महाराज श्री
अध्यक्ष : गो. श्री 105 श्री मुकुटराय जी महोदय श्री
उपाध्यक्ष : गो. श्री 105 श्री शरदराय जी महोदय श्री

मुख्य कार्यालय :
श्री श्याम मनोहर प्रभु मन्दिर, चौपासनी
जोधपुर। फोन : 0291-2753230

उद्देश्य :

1. युवाओं को पुष्टिमार्गीय सत्संगी बनाना।
2. वैष्णव युवाओं को संगठित करना।
3. कीर्तन सीखना।
4. मन्दिर के उत्सवों में भाग लेना।
5. मार्गीय पुस्तकों हेतु पुस्तकालय बनाना।
6. मार्गीय पुस्तकें प्रकाशित करना।
7. गौ-सेवा के कार्य करना।
8. समाज सेवा के कार्य करना।

बृहदवामनीपुराण में वर्णित ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण की महिमा, विधि तथा कथानक पूर्वक तिर्यक्रपुण्ड्र का निषेध

ब्रह्मा और भृगु आदि ऋषियों के संवाद में भृगु आदि ऋषियों ने कहा- हे कमलोद्भव! चतुर्मुख ब्रह्माजी! आप के लिये नमस्कार है। कृपा करके आपसे हमलोगों ने गोपीयों के उत्तम माहात्म्य को विस्तार पूर्वक श्रवण किया ।।१।। अब हमलोग वैष्णवों के लिये ऊर्ध्वपुण्ड्र (तिलक) को सुनना चाहते हैं, ऊर्ध्वपुण्ड्र किस द्रव्य से धारण करे तथा उसके आकार का विधान क्या है? ।।२।। हे कमलासन! कृपा करके इसको आप विस्तार पूर्वक कहिये, भृग्वादियों के वचन को सुन कर प्रजापति ने कहा ।।३।। यहां ब्रह्माजी कह रहे हैं, हे श्रेष्ठ भूदेवों! (ब्राह्मणों!) ऊर्ध्वपुण्ड्र की विधि को श्रवण करिये, सर्वप्रथम शुद्धजल से स्नान करके वस्त्रों को धारण करें ।।४।। उसके पश्चात् चरणामृत से संमिश्रित रेणु को मुख में डाले तथा नेत्रों पर स्पर्श कराके मस्तक पर डाले।।५।। अपने आचार्यचरणों के चरणों में नमस्कार करके तिलक धारण करें, भगवान् वासुदेव श्रीकृष्ण के उत्सव के दिन उनके तिलक से शेष हरिद्रा से बनी हुई अरुण वर्ण की जो शुद्ध उत्तम कुङ्कुम, उससे ऊर्ध्वपुण्ड्रधारण करना चाहिये। अथवा भगवत्प्रसादी कुङ्कुम से युक्त चन्दन, उसको ऊर्ध्वपुण्ड्र के लिये ग्रहण करे तथा जल से उसका विमर्दन करे। भगवान् के चरणकमल के केसर के सुलेप से सभी धर्मों से विहीन पुलिन्दियों ने बिना परिश्रम के ही मनोद्भव आधि (कामवासना) का त्याग किया तथा उन्हें श्रीकृष्ण की प्राप्ति भी हुई।।६।।७।।८।।९।।

तस्मात्सर्वप्रयत्येन कुङ्कुमेन सुगन्धिना ।
पुण्ड्राणि रचयेत् धीमान् ललाटादियथाक्रमम् ।।१०।।
ऊर्ध्वपुण्ड्रं कौङ्कुमं तु यः कुर्याद् भक्तितो नरः।
स स्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः ।।११।।
दत्तानि सर्वदानानि तस्य तुष्टो हरिः स्वयम् ।
ऊर्ध्वपुण्ड्रं कौङ्कुमं तु ललाटादिषु यस्य वै ।।१२।।
दृश्यते मरणे काले यमस्तस्मात् पलायते ।
यमदूताःपलायन्ते नात्र कार्या विचारणा ।।१३।।

स्वप्नेऽपि यमदूतान्वै नैव पश्यति वैष्णवः ।
अत्रैवोदाहराम्यद्य इतिहासं पुरातनम् ।।१४।।
विप्रोभून्कीकटे देशे सर्वधर्मविवर्जितः ।
संध्यादिकर्मणा हीनो चौर्यलुंठनतत्परः ।।१५।।
राज्ञा वारत्रयं तस्य देशान्निश्काशनं कृतम् ।
ततोऽसौ दक्षिणदिशं महारण्ये जगाम ह ।।१६।।
नाना पक्षिगणाकीर्णे नाना मृगनिषेविते ।
सिंहव्याघ्रवराहादिगजादिगणसंकुले ।।१७।।
नाना वृक्षलतागुल्मशोभिते निर्जने शुभे ।
तस्मिन् विवेश विप्रोऽसौ व्यालोलूकशिवाजिरे ।।१८।।
तालैस्तमालैर्हिंतालैः रसालैः पनसैस्तथा ।
पिचुमन्दैः कोविदारैराम्रैराम्रातकैरपि ।।१९।।
अश्वत्थैःप्लक्षन्यग्रोधतिंतिणीबीजपूरकैः ।
नारिकेलैस्तु खर्जूरैः पीलुभिर्मंडिते वने ।।२०।।
तत्र शीतलपानीयनदीं पश्यन् गतक्लमः ।
पुरोऽपश्यन्मनोहारिमन्दिरं श्रीहरेः शुभम् ।।२१।।

इसलिये बुद्धिमान् व्यक्ति को चाहिये कि वह ललाट आदि स्थानों में क्रमानुसार सर्वप्रयत्नपूर्वक सुगन्धित कुङ्कुम से पुण्ड्रों को धारण करे।।१०।। जो मनुष्य (नर) भक्तिपूर्वक कुङ्कुम से ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करता है, उसने सभी तीर्थों में स्नान कर लिया सभी यज्ञों को कर लिया, उसने सभी प्रकार के दान दे दिया तथा उसके ऊपर भगवान् हरि स्वयं प्रसन्न हो गये ।।११½।। जिसके ललाट आदि स्थानों में कुङ्कुम से किया गया ऊर्ध्वपुण्ड्र दीखता है, मरणकाल के समय उससे यमराज भाग जाते हैं, यमदूतों के भाग जाने में तो विचार ही नहीं करना चाहिये।।१३।। वह वैष्णव स्वप्न में भी यमदूतों को नहीं देखता है। अब इस विषय में प्राचीन इतिहास को प्रस्तुत करता हूँ।।१४।। कीकट देश (स्थान) में सर्वधर्मों से रहित एक विप्र (ब्राह्मण) था, जो कि सन्ध्यादि कर्मों से हीन तथा चोरी एवं लुटने में तत्पर रहता था ।।१५।। राजा ने तीनबार उसका देश निकाला किया, उसके बाद

वह दक्षिण दिशा में गहन जंगल में चला गया ॥१६॥ वह जगंल नाना प्रकार के पक्षिगणों से पूर्ण, नाना प्रकार के मृगो से सेवित तथा सिंह, व्याघ्र, वराह तथा हाथियों आदि के गणों से व्याप्त था॥१७॥ व्याल, उलूक तथा सियार आदि के निवासस्थान तथा नाना वृक्ष, लता एवं गुल्मों से शोभित उस निर्जनवन में उस विप्र ने प्रवेश किया ॥१८॥ ताल, तमाल, हिंताल, आम, पनस, नीम, कचनार, अश्वत्थ, पल्क्ष, न्यग्रोध, इमली, अनार, नारियल, खजूर तथा पीलु आदि वृक्षों से शोभित वन में शीतल एवं पीनेयोग्य जल से पूर्ण नदी को देखते हुवे उसका श्रम दूर हो गया, और आगे उसने भगवान् श्रीहरि के मनोहारि शुभ मन्दिर को देखा ॥१९-२१॥

तत्र गत्वा द्वारि देशे पतितं कुङ्कुमं शुभम् ।
अरुणं रजनीचूर्णजातं दृष्ट्वा द्विजाधमः ॥२२॥
स्वललाटे धृतं तेन बभूवाथोर्ध्वपुण्ड्रकम् ।
ततो गत्वा बहिर्देशं कन्दमूलकृताशनः ॥२३॥
अश्वत्थमूले सुष्वाप कालात्मा नाग आगमत् ।
दष्टस्तु दक्षिणे पादे पञ्चत्वमगमत्तदा ॥२४॥
ततो यमगणाःक्रूराः पापिनां दण्डदायकाः ।
समागतास्तु तं नेतुं तावच्छ्रीविष्णुपार्षदाः ॥२५॥
किरीटिनः कुण्डलिनो हारिणो वनमालिनः ।
शंखचक्रगदापद्मसुशोभितकराम्बुजाः ॥२६॥
अपीच्यदर्शनास्तत्र समाजग्मुरनेकशः ।
यमदूतान्विनिर्भत्स्य निर्भया ऊचिरे द्विजाः ॥२७॥
भो दूता यमराजस्य यूयं ज्ञानविवर्जिताः ।
धर्मान् भागवतान् शुद्धान् न ज्ञास्यथ शुभावहान् ॥२८॥

मन्दिर पहुँचकर उस द्विजाधम ने दरवाजे पर गिरा हुआ अरुणवर्ण के रजनी चूर्ण (सुन्दर कुङ्कुम) के ढेर को देखकर उसने अपने ललाट पर धारण किया, उससे उसके ललाट पर सुन्दर ऊर्ध्वपुण्ड्र हो गया ॥२२½॥ उसके बाद बाहर जाकर उसने कन्द और मूल को खाया एवं

पीपल के जड़ के पास सो गया। उस समय कालरूपी नाग वहाँ आया, उसके दक्षिण पैर में उसने दंश किया, तब वह विप्र पञ्चत्व (मृत्यु) को प्राप्त हो गया ।।२४।। ब्रह्मा ने भृगु आदि ऋषियों से कहा, हे द्विजो! उस समय उस द्विजाधम को ले जाने के लिये पापियों को दण्ड देने वाले क्रूर यमदूत वहाँ आये, तब तक किरीट, कुण्डल, हार, वनमाला, शंख, चक्र, गदा, पद्म से सुशोभित, हाथ में कमल लिये हुवे, अतिसुन्दर दर्शन है जिनका ऐसे अनेक श्रीविष्णु के पार्षद भी वहाँ आ गये और यमदूतों की भर्त्सना करके निर्भय बोले।।२७।। हे यमराज के दूतों! आप लोग ज्ञान से रहित हैं, इसलिये शुभ की प्राप्ति करानेवाले शुद्ध भागवत धर्म को नहीं जानते हैं।।२८।।

अतो भवन्तो गच्छन्तु यमराजस्य धामनि ।
धर्मराजमथो ब्रूतमस्माकं वचनं भटाः ।।२९।।
अयं विप्रो दुराचारि वेश्यादिनिरतोऽपि च ।
स्नानसंध्यादिहीनोऽपि नरकार्होऽपि सर्वथा ।।३०।।
अज्ञानादस्य भाले तु हरेर्भुक्तं सुकुङ्कुमम् ।
शुभोर्ध्वपुण्ड्रतां जातं तेनाऽयं वैष्णवो ह्यभूत ।।३१।।
नास्य भक्तौ हरौ नैव प्रसादोपरि भावना ।
स्वेच्छया लापितं तेन ऊर्ध्वपुण्ड्रमभूदयम् ।।३२।।
वैष्णवो नात्र सन्देहो भगवद्गन्धधारणात् ।
अतोऽयं वैष्णवे लोके गन्ता नष्टास्तु दुश्क्रियाः।।३३।।
एतस्य पातकं नास्ति सत्यं सत्यं न संशयः ।
अज्ञानाद् वह्निसंस्पर्शो दाहायैव सुयुज्यते ।।३४।।
एवं कृष्णस्य सन्बन्धो दोषनाशाय युज्यते ।
तस्मात् त्वदीयनगरीं न गन्ता विष्णुशासनात् ।।३५।।
धर्मज्ञो धर्मराजोऽस्ति सर्वं जानाति सुव्रतः ।
इति ब्रुवन्तु गच्छन्तु धर्मराजं वचो हि नः ।।३६।।
इत्युक्त्वा ते द्विजाः सर्वे किंकिणीजालमालिनि ।
शतघंटासमायुक्ते स्फुरत्पुरटसुन्दरे ।।३७।।

नाना मौक्तिकजालादिवितानैरुपशोभिते ।
रत्नादिखचिते सर्वशोभनैकनिकेतने ।।३८।।
न तं कृतघ्नाः पश्यन्ति न नृसंशा न नास्तिकाः।
न पापिनो दुराचारा विमुखा ये परे हरौ ।।३९।।
तस्मिन् विमाने संस्थाप्य तं विप्रं सुरपूजितम् ।
नानाप्सरोगणैर्जुष्टं दिव्यमाल्यैः सुशोभितम् ।।४०।।
पीतवस्त्रं चतुर्बाहुं श्यामं कमललोचनम् ।
शंखचक्रादिललितं ते ययुर्विष्णुमन्दिरम् ।।४१।।

इसलिये हे भटों! आपलोग यमराज के धाम में जायें और धर्मराम को हम लोगों के वचन कहें।।२९।। यद्यपि यह विप्र दुराचारी, वेश्यादि में निरत, स्नान, सन्ध्यादि कर्म से हीन सर्वथा नरक के योग्य भी है।।३०।। परन्तु इसने अज्ञान से भगवान् हरि का प्रसादी कुङ्कुम भाल पर धारण किया, जिससे मङ्गलमय ऊर्ध्वपुण्ड्र हो गया, इसलिये यह वैष्णव ही हो गया।।३१।। इसकी न तो भक्ति में, न तो श्रीहरि में, न तो प्रसाद के ऊपर भावना है, इसने स्वेच्छा से कुङ्कुम को धारण किया, उससे यह ऊर्ध्वपुण्ड्र हो गया।।३२।। भगवद् भुक्त कुङ्कुम के धारण से यह वैष्णव हो गया, इसमें संदेह नहीं है। इसके सभी दुष्कर्म नष्ट हो गये, इसलिये यह वैष्णवलोक में जायगा।।३३।। अब इसका पातक नहीं है, यह सत्य है, इसमें संशय नहीं है। जैसे अज्ञान से भी हुआ अग्नि का स्पर्श, दाह के लिये ही होता है, उसी प्रकार कृष्ण का सम्बन्ध दोषों के नाश के लिये ही होता है, इसीलिये भगवान् विष्णु के शासन के कारण यह आपकी नगरी (यमलोक) में नहीं जायगा।।३४-३५।। सुव्रत धर्मराज धर्मज्ञ हैं, सब जानते हैं, आपलोग जायें और धर्मराज को हमलोगों की ये सब बातें कहें।।३६।। हे द्विजो! इस प्रकार कहकर वे सब विष्णु पार्षद, घुंघुरुओं की जाल की माला सैकड़ों घण्टों से युक्त, सुवर्ण की कान्ति से देदिप्यमान, नाना प्रकार की मोतियों के जाल आदि से निर्मित चंदुए से शोभित, रत्न आदि से जड़ित, शोभा के एकमात्र निकेतन ऐसा जो विमान, जिसको कृतघ्न, कसाई, नास्तिक, पापी, दुराचारी तथा भगवान् श्रीहरि से विमुखजन नहीं देखते हैं, ऐसे विमान में देवपूजित,

अप्सराओं के नाना समूहों से सेवित, दिव्यपुष्पों से सुशोभित, पीताम्बरधारी, चतुर्भुज, श्यामवर्ण वाले, कमलनयन तथा शंख चक्रादि से सुशोभित उस ब्राह्मण को विरजमान करके विष्णुलोक गये॥३७-४१॥

निवृत्ता यमराजस्य दूता यमनिकेतने ।
गत्वा तु धर्मराजेन्द्रं विस्तरात् सर्वमूचिरे ॥४२॥
धर्मराजस्तु तं वृत्तं श्रुत्वोत्कलितमानसः ।
दूतान्प्रतिशुभैर्वाक्यैरुवाच सदसि स्थितः ॥४३॥

यम उवाच

यस्य भाले भगवतः प्रसादं कुङ्कुमं शुभम् ।
ते वै भागवता ज्ञेया नात्र नेया ममान्तिकम् ॥४४॥
ऊर्द्ध्वपुण्ड्रधरा ये वै श्रीकृष्णाश्रयवर्तिनः ।
श्रीकृष्णनामनिरतास्तत्मुद्राङ्कितदेहिनः ॥४५॥
ऊर्ध्वपुण्ड्रं ललाटे तु कौङ्कुमं शोणरोचिषम् ।
मध्ये गोपीजनात्पश्चात् वल्लभायेति श्रीयुजे ॥४६॥
मृदाङ्कितं वैष्णवास्ते नात्र नेया ममान्तिकम् ।
चक्रादिचिन्हनिरता दारुमालालसद्गलाः ॥४७॥
उरः पर्यन्तमालाभिः शोभिताः कृष्णसेवकाः ।
नात्र नेया भवद्भिस्ते वैष्णवा भक्तितत्पराः ॥४८॥

बाद में यमदूतों ने यमलोक पहुँचकर विस्तार पूर्वक सब कुछ धर्मराज को बताया॥४२॥ सभा में स्थित धर्मराज ने उस वृत्तान्त को उत्कण्ठित मन से श्रवण करने के बाद दूतों के प्रति मङ्गलवचन कहे॥४३॥ यमराज बोले- जिनके भाल पर भगवत्प्रसादी शुभ कुङ्कुम है, उन्हें निश्चित ही भागवत समझें, उन्हें यहाँ मेरे पास न लायें॥४४॥ जो ऊर्ध्वपुण्ड्र को धारण करने वाले हैं, जो श्रीकृष्ण का आश्रय लेने वाले हैं तथा श्रीकृष्ण के नाम जप में निरत हैं तथा उनकी मुद्राओं से अंकित हैं, ऐसे देह धारियों को यहाँ हमारे पास न लायें॥४५॥ जिसके ललाट पर कुङ्कुम से किया गया लाल रंग का ऊर्ध्वपुण्ड्र है तथा मध्य में गोपीचन्दन से 'श्रीगोपीजनवल्लभाय नमः' अंकित है, ऐसे वैष्णवों को यहाँ हमारे पास न लायें॥४६१/२॥ चक्रादिचिन्हों

को निरन्तर धारण करने वाले, तुलसी के काष्ठ की माला से शोभायमान है कण्ठ जिनका, हृदय पर्यन्त तुलसीकाष्ठ की माला से सुशोभित ऐसे जो श्रीकृष्ण के सेवक तथा उनकी भक्ति में तत्पर वैष्णव, वे आपलोगों के द्वारा यहाँ न लाये जायें।।४८।।

श्रीकृष्णसेवनपरास्तन्मन्दिरसुमार्जकाः ।
तदर्पितमनोबुद्धिकायवाकाक्रियाः शुभाः ।।४९।।
निजाचार्यसुसेवायां तत्परास्तस्य किङ्कराः ।
शीतोष्णादिषु कृष्णस्य सुखसेवारतास्तु ये ।।५०।।
अज्ञानादथवा ज्ञानाद्येहि सर्वनिवेदिनः ।
श्रीकृष्णशरणा ये वै ते नानेयाः कदाचन ।।५१।।
जन्मोत्सवादिनिरताः हरिसेवनतत्पराः ।
लोकसम्मानरहितास्सर्वत्र समबुद्धयः ।।५२।।
शुद्धाद्वैतैकसन्निष्ठाः भगवच्चिन्हधारकाः ।
भक्तसम्मानकरणे समुद्युक्तास्तु ये जनाः ।।५३।।
जीवेषु निजपुत्रेषु दारवत्स्नेहतत्पराः ।
भगवत्सङ्गिसंबद्धास्ते नानेयाः कदाचन ।।५४।।
बहुना किमिहोक्तेन श्रुणुत दूत सत्तमाः ।
भक्तानां श्रीहरेर्यत्र सदाभासोऽपि दृश्यते ।।५५।।
ते नानेया भवद्भिस्तु मदीयाज्ञानुवर्तिभिः ।
इत्युक्ता यमराजेन तुष्टुवुर्भगवद्गुणान् ।।५६।।

भगवान् श्रीकृष्ण की सेवामें तत्पर, उनके मन्दिर के सुमार्जक (सोहनी करने वाले), उन्हीं श्रीकृष्ण में अर्पित कर दिया है मन, बुद्धि, काया, वाणी तथा शुभकर्म जिन्होंने, अपने आचार्यचरणों की सेवा में तत्पर तथा उनके किंकर, शीतकाल-उष्णकाल आदि में ऋतुओं के अनुसार श्रीकृष्ण के सुख के लिये सेवा में रत, अज्ञान अथवा ज्ञान से सर्वस्व निवेदन करने वाले ऐसे जो श्रीकृष्ण के शरणागत हैं, उन्हें कभी भी यहाँ न लायें।।४९-५१।। श्रीकृष्ण के जन्मोत्सव आदि में निरत, हरिसेवा में तत्पर, लोक सम्मान की इच्छा से रहित, एकमात्र शुद्धाद्वैत सिद्धान्त में निष्ठ, सर्वत्र समबुद्धिवाले,

भगवच्चिन्हों को धारण करने वाले, भक्तों के सम्मान करने में समुद्यत, जीवों में तथा अपने पुत्रों में पत्नि के समान स्नेह करने में तत्पर तथा भगवत्सङ्गिजनों से सम्बन्ध रखने वाले ऐसे जो वैष्णव हैं, उन्हें कदापि यहाँ न लायें।।५२-५४।। हे श्रेष्ठदूतों! सुनिये, इस विषय में बहुत कहने से भी क्यों, जहाँ (जिनमें) श्रीहरि के भक्तों की सत्ता- आभास भी दिखे, मेरी आज्ञा का अनुपालन करने वाले आपलोगों के द्वारा वे यहाँ (यमलोक में) न लाये जायें। इस प्रकार कह कर यमराज ने भगवान् के गुणों की स्तुति किया ।।५५-५६।।

ब्रह्मोवाच

एवं पुण्ड्रस्य माहात्म्यं दृष्ट्वा दूता यमस्य वै ।
परमाश्चर्यतामापुः प्रशंसुर्वैष्णवान् गुणान् ।।५७।।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन भगवद्गन्धधारिणः ।
भगवद्भुक्तगन्धेन पीतेनाथोऽरुणेन च ।।५८।।
कुङ्कुमेन चरेद् धीमान् पुण्ड्राणि द्वादशैव तु ।
दण्डाकारं ललाटे स्याद् पद्माकारं तु वक्षसि ।।५९।।
वेणुपत्रनिभं बाह्वोरन्यदीपाकृतिर्भवेत् ।
समारभ्य भ्रुवोर्मूलं सान्तरालं प्रकल्पयेत् ।।६०।।
दशाङ्गुलप्रमाणं तत् उत्तमोत्तममुच्यते ।
नवाङ्गुलं मध्यमं स्यादष्टाङ्गुलमतः परम् ।।६१।।
सप्तषट्पञ्चभिः पुण्ड्रं मध्यमं परिकीर्तितम् ।
चतुस्त्रिद्व्यङ्गुलैर्पुड्रं कनिष्ठं त्रिविधं स्मृतम् ।।६२।।
सान्तरालं चोर्ध्वपुण्ड्रं सच्छिद्रं रचयेद्बुधः ।
परिणाहोङ्गुलमितो रचयेत्तस्य निश्चितम् ।।६३।।
ललाटे केशवं विद्यान्नारायणमथोदरे ।
माधवं हृदिविन्यस्य गोविन्दं कण्ठदेशके ।।६४।।
उदरे दक्षिणे पार्श्वे विष्णुरित्येव निश्चितम् ।
तत्पार्श्वबाहुमध्ये तु मधुसूदनमेव च ।।६५।।
त्रिविक्रमं कर्णमूले वामनं वामपार्श्वके ।

श्रीधरं वामबाहौ तु हृषीकेशं तु कर्णयोः ।।६६।।
पृष्ठे तु पद्मनाभं स्यात् ककुद्दामोदरं न्यसेत् ।
तत्प्रक्षालनतोयेन वासुदेवं तु मूर्द्धनि ।।६७।।

ब्रह्माजी बोले- इस प्रकार पुण्ड्र का माहात्म्य देखकर यमदूतों को परमाश्चर्य हुआ और उन्होंने वैष्णव के गुणों की प्रशंसा किया।।५७।। भगवद्भुक्त को धारण करने वाले बुद्धिमान् वैष्णव इसलिये सर्वप्रयत्न पूर्वक भगवद् भुक्त पीतगन्ध से अथवा अरुण कुङ्कुम से ही बारह पुण्ड्रों को धारण करें।।५८१/२।। ललाट पर दण्डाकार, हृदय पर पद्माकार, बाहुओं पर वेणुपत्राकार तथा अन्य स्थानों पर दीपाकार पुण्ड्र होना चाहिये। वह पुण्ड्र भ्रुव के मूल से प्रारम्भकर ब्रह्मरन्ध्र तक सान्तराल होना चाहिये।।५९-६०।। दश अंगुल प्रमाण (लम्बा) पुण्ड्र उत्तमोत्तम कहा जाता है। नव अंगुल प्रमाणवाला पुण्ड्र मध्यम कहा जाता है, इसके बाद आठ, सात, छ और पाँच अंगुलवाला पुण्ड्र मध्यम कहा जाता है, कनिष्ठपुण्ड्र चार, तीन और दो अंगुल का होता है।।६१-६२।। बुद्धिमान् वैष्णव ऊर्ध्वपुण्ड्र को सान्तराल और सच्छिद्र धारण करें, उसके विस्तार को अंगुलि से निश्चित तौर पर नाप करके रचना करे।।६३।। बारह पुण्ड्रों में से प्रथम ललाट वाले पुण्ड्र में केशव, उदर में नारायण, हृदय में माधव, कण्ठ में गोविन्द, दक्षिण उदर के पास में विष्णु, उसके पास बाहू के मध्य में मधुसूदन, कर्णमूल में त्रिविक्रम, वामपार्श्व में वामन, वामबाहू में श्रीधर, दोनों कानों में हृषीकेश, पृष्ठ में पद्मनाभ तथा ककुद् में दामोदर को स्थापित करे और उसके प्रक्षालित जल से वासुदेव को मस्तक पर धारण करें।।६४-६७।।

ऊर्ध्वपुण्ड्रं द्विजातीनां क्षत्रियाणां त्रिपुण्ड्रकम् ।
अर्धचन्द्रन्तु वैश्यानां वर्तुलं शूद्रजातिषु ।।६८।।
वैष्णवा यदि ये वर्णा क्षत्रियाद्या भवन्ति हि ।
ऊर्ध्वपुण्ड्रं तु कुर्युस्ते नैव तिर्यक् कदाचन ।।६९।।
तिर्यक् पुण्ड्रं न कुर्वीत संप्राप्ते मरणेऽपि च ।
तिर्यक् पुण्ड्रधरो विप्रः सर्वधर्मविवर्जितः ।।७०।।

तिर्यक् पुण्ड्रं यस्य भाले विप्रस्य च सुदृश्यते ।
तं दृष्ट्वाऽप्यथवा स्पृष्ट्वा सचैलं स्नानमाचरेत् ।।७१।।
तिर्यक् पुण्ड्रधरो यस्तु भस्मधारी च यो द्विजः।
सर्वधर्मसमायुक्तो न सम्भाष्यः कदाचन ।।७२।।
तस्माद् विप्रः प्रयत्नेन न कुर्यात् ति[१]र्यपुण्ड्रकम् ।
ऊर्ध्वपुण्ड्रं चरेद धीमान् श्रीहरेः प्रीतये द्विजाः ।।७३।।
तिर्यक् पुण्ड्रं लिपीकृत्य यस्तु सेवां समाचरेत् ।
वृथैव सेवनं तस्य नरकं प्रतिपद्यते ।।७४।।
ब्राह्मणः कुलजो विद्वान् भस्मधारी भवेद्यदि ।
वर्जयेत्तादृशं विप्रा मद्योच्छिष्टं यथा घटः ।।७५।।
भस्मधारी यस्तु विप्रः श्वपचादधमः स्मृतः ।
निंदितः सर्व कार्येषु श्राद्धादिषु न संशयः ।।७६।।

ब्राह्मणों का ऊर्ध्वपुण्ड्र, क्षत्रियों का त्रिपुण्ड्र, वैश्यों का अर्धचन्द्राकार तथा शूद्रजाति का गोल पुण्ड्र होता है।।६८।। क्षत्रिय आदि वर्ण वाले यदि वैष्णव होते हैं तो उन्हें ऊर्ध्वपुण्ड्र ही करना चाहिये, कभी भी तिर्यक् पुण्ड्र नहीं करना चाहिये।।६९।। मरण भी प्राप्त होता हो तब भी तिर्यक् पुण्ड्र नहीं करना चाहिये, तिर्यक् पुण्ड्र धारण करने वाला ब्राह्मण सभी धर्मों से रहित होता है।।७०।। जिस ब्राह्मण के भाल पर तिर्यक्पुण्ड्र दीखता हो, उसे देखकर अथवा स्पर्श करके वस्त्र सहित स्नान करें।।७१।। सभी धर्मों से युक्त जो द्विज, तिर्यक् पुण्ड्रधारी हो अथवा भस्मधारी हो, वह कभी भी भाषण करने के योग्य नहीं होता है।।७२।। इसलिये विप्रों को प्रयत्नपूर्वक तिर्यक् पुण्ड्र नहीं करना चाहिये। हे द्विजो! बुद्धिमान् व्यक्ति को चाहिये कि वह भगवान् श्रीहरि की प्रसन्नता के लिये ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करे।।७३।। जो व्यक्ति तिर्यक्पुण्ड्र धारण करके भगवान् की सेवा करता है, उसकी सेवा व्यर्थ है और वह नरक की ओर जाता है।।७४।। ब्राह्मण कुल में उत्पन्न विद्वान् यदि भस्मधारी हो तो, उसका उसी प्रकार से त्याग करे जैसे मदिरा

१. तिर्यक्

से उच्छिष्ट घट का त्याग किया जाता है।।७५।। जो विप्र भस्मधारी होता है, वह चाण्डाल से भी अधम कहा गया है, वह श्राद्धादि सभी कार्यों में निन्दित है, इसमें संशय नहीं ।।७६।।

आदर्शे सुविलोक्याथ ऊर्ध्वपुण्ड्रं चरेद् द्विजाः।
तदभावे जलेनापि तिलकं रचयेत्सुधीः ।।७७।।
दर्पणादि विना यस्तु कुर्याद् भाले सुपुण्ड्रकम् ।
तस्य पुण्ड्रं निरर्थं स्याद्धरिस्तस्य न तुष्यति ।।७८।।
वर्तुलं दीर्घमेवात्र तिर्यक् ह्रस्वं तनुं ततम् ।
वक्रं तिर्यञ्च बद्धाग्रं अतिदीर्घतरं तु यत् ।।७९।।
छिन्नमूलं रूक्षवर्णमासक्तं पूतिगंधियत् ।
अशुद्धमविसह्यं च तथा नाङ्गुलिकल्पितम् ।।८०।।
एवं विधं चोर्ध्वपुण्ड्रमनर्थकमथो द्विजाः ।
त्यत्क्वा पुण्ड्रं चरेद् धीमान् नासादिब्रह्मरन्ध्रकम् ।।८१।।
मूले सिंहासनं कुर्यात् पद्मं तस्योपरि न्यसेत् ।
श्रीगोपीजनपूर्वं तु वल्लभायेति मुद्रिकाम् ।।८२।।
ऊर्ध्वपुण्ड्रस्य मध्ये तु धारयेद् गोपीकामृदा ।
चक्रादिकं ततो धार्यं ततस्सेवां समाचरेत् ।।८३।।
एवं ते चोर्ध्वपुण्ड्रस्य विधानं तु मयोदितम् ।
वैष्णवानां हितार्थाय भवत्प्रश्नाभ्यनुज्ञया ।।८४।।
किमन्यच्छ्रवणे श्रद्धा तद्वक्तव्यं द्विजन्मनः ।
यूयं धन्यतमालोके येषां तु मतिरीदृशी ।।८५।।
इति बृहद् वामनपुराणोर्ध्वपूण्ड्राध्याय संग्रहः।

हे द्विजो! स्नान के पश्चात् वस्त्र धारण करने के बाद दर्पण में अच्छे प्रकार से देखकर ऊर्द्वपुण्ड्र धारण करे, दर्पण के अभाव में बुद्धिमान् व्यक्ति जल में देखकर तिलक धारण करें।।७७।। दर्पण आदि में देखे बिना जो व्यक्ति भाल पर सुन्दर पुण्ड्र करता है, उसका पुण्ड्र निरर्थक होता है, श्रीहरि उससे प्रसन्न नहीं होते।।७८।।

गोल, दीर्घ, तिर्यक्, छोटा, पतला, मोटा, तेढ़ा, तिरछा, अग्रबद्ध, अतिदीर्घ, छिन्नमूल, रूखेवर्णका, सटा हुआ, दुर्गन्धयुक्त, अशुद्ध द्रव्य का, असह्य (भयानक) तथा अंगुली से बिना नपा, इस प्रकार का ऊर्ध्वपुण्ड्र अनर्थक होता है। इसलिये हे द्विजों! बुद्धिमान् व्यक्ति को चाहिये कि वह पूर्वोक्त दोषों का त्याग करता हुआ नासिका से ब्रह्मरन्ध्र तक तिलक धारण करें॥७९-८१॥ तिलक के मूल में सिंहासन करे तथा उसके ऊपर कमल को रखे, ऊर्ध्वपुण्ड्र के मध्य में गोपीचन्दन से '**श्रीगोपीजनवल्लभाय नमः**' की मुद्रा को धारण करें, उसके बाद चक्र आदि की मुद्रा को धारण करें, उसके बाद भगवत्सेवा करें॥८२-८३॥ ब्रह्मा ने भृगु आदि ऋषियों से कहा-आपलोगों के प्रश्न के अनुसार और वैष्णवों के हित के लिये आपलोगों के सन्मुख मेरे द्वारा ऊर्ध्वपुण्ड्र का विधान कहा गया॥८४॥ हे द्विजों! इस लोक में आपलोग धन्यतम् है, जो कि इस प्रकार की आप लोगों की मति है, और भी क्या आपलोगों की श्रवण करने की इच्छा है, उसको बताइये॥८५॥ इस प्रकार बृहद्वामनपुराण के ऊर्ध्वपुण्ड्राध्याय का संग्रह पूर्ण होता है।

वैष्णव जीवन हेतु सुनहरी वाक्य

- गाँव में चल रही स्वमार्गीय पाठशाला में नियमित उपस्थित रहना चाहिए।
- प्रभु दैन्यता से प्रसन्न होते हैं साधन सम्पत्ति से नहीं।
- पुष्टिमार्ग में प्रभु प्राप्ति के लिए हृदय में ताप होना जरूरी है।
- वैष्णवों के जीवन में किसी भी प्रकार की परिस्थिति में आधार एकमात्र श्रीकृष्ण है।
- पुष्टिमार्ग में प्रभु प्राप्ति केलिए असमर्पित वस्तु का त्याग आवश्यक है।
- अन्याश्रय नहीं करना, पुष्टिमार्ग में अन्याश्रय समान कोई दूसरा अपराध नहीं।
- श्री ठाकुरजी की सेवा के साथ गुरुसेवा और वैष्णव सेवा का भी आग्रह रखना चाहिए।
- गाँव में बिराज रहे निधि स्वरूप तथा श्री महाप्रभुजी तथा गुरुदेव के दर्शन करने के लिए प्रतिदिन जाना चाहिए।
- दर्शन दैन्य भाव सहित करने चाहिए। सन्मुख बातें नहीं करनी चाहिए।
- वैष्णव धर्म के नाम पर अन्य किसी के साथ लौकिक स्वार्थ की इच्छा करनी महापाप है।
- इस कलिकाल में अष्टाक्षर महामन्त्र एकमात्र उद्धार का साधन है।
- श्रीनाथजी, श्री महाप्रभुजी तथा श्री गुसाँई जी को एक ही स्वरूप जानना चाहिए।
- प्रभु द्वारा अपने को स्वयोग्यता से अधिक ही प्राप्ति हुई है उसी में सन्तोष मानना चाहिए।
- श्रीमद् भागवत को आदरपूर्वक नियमित अध्ययन करना चाहिए।
- श्री हरि हमेशा रक्षण करेंगे, अपने ऊपर बिराजते श्री प्रभु के दण्डवत चरण स्पर्श कर फिर ही बाहर जाना चाहिए।
- श्रीकृष्ण और गुरुदेव की सेवा लौकिक स्वार्थ की इच्छा के साथ करे तो निश्चित ही क्लेश की प्राप्ति होगी।
- वैष्णवों को हमेशा धोती बंडी-तिलक धारण करने चाहिए यही वैष्णव के सच्चे आभूषण (वेश) है।
- अधर्म को सहन नहीं करना यही सच्ची धर्म भावना है।
- जब धर्म और कीर्ति एक-दूसरे के विरुद्ध होवे तब धर्म की रक्षा करनी चाहिए।
- प्रभु के प्रिय बनने के लिए 'वाह' और 'स्वाद' दोनों का त्याग आवश्यक है।